International Journal of Applied Research 2020; 6(1): 117-121

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2020; 6(1): 117-121
www.allresearchjournal.com
Received: 14-11-2019
Accepted: 21-12-2019

डॉ. मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर0बी0डी0 महिला महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. मंजु चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर0बी0डी0 महिला महाविद्यालय, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत

वर्तमान में श्रीमद्भगवद्गीता के नैतिक विचारों की प्रासंगिकता

डॉ. मंजु चौधरी

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता कुछ शब्दों, वाक्यों, श्लोकों उनके भावार्थो व उन पर लिखे गये भाषयों व टीका टिप्पणियों का संकलन मात्र ही नही है अपितु इसे सभी देशकालों में प्रासंगिक व मानवीय समस्याओं से सम्बन्धित एक ऐसे पथप्रदर्शक ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है जो सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् आज भी न केवल मानवीय समस्याओं की ओर इंगित करता है बल्कि उनका सर्वोत्तम समाधान भी प्रस्तुत करता है। यहीं कारण है कि आदि काल से श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेकानेक भाष्य न केवल भारतीय भाषाओं में लिखे गये हैं बल्कि यह सर्वाधिक अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में अनूदित ग्रंथों में से एक है। ऐसी परिस्थिति में एक नवीन लेखन श्रीमद्भगवद्गीता पर उपलब्ध अनन्त साहित्य का केवल एक अंश मात्र होगा, जिसमें मुख्य रूप से वर्तमान संदर्भो में गीता के नैतिक दर्शन की प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्याय महाभारत के भीष्म पर्व के 23 से 40 तक के अध्याय हैं जिसकी रचना का श्रेय वेदव्यास को दिया जाता है किंतु इस संदर्भ में कोई प्रमाण नहीं है।[1] गीता का सूत्रपात जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में हुआ था जहाँ एक गृह कलह ने भारत का रूप ले लिया था। युद्ध में होने वाले महाविनाश के विचार मात्र से अर्जुन युद्ध से विमुख होने लगता है। ऐसी स्थिति में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के अंर्तद्वंद को शांत करते हुये उसे क्या करना चाहिए और क्यों करना चाहिए यह समझाने के लिए गीता का उपदेश दिया।[2] यह अर्जुन और कोई वरन् आज के भौतिकवादी युग में फंसा हुआ प्रत्येक मानव है जो अपने कर्तव्य पथ से भटक गया है। बढ़ती स्पर्धा में वह तनाव, निराशा, अवसाद से ग्रस्त हो गया है फ्रॉयड जैसे मनोवैज्ञानिक भी उसे इस अवसाद से बाहर नहीं निकल पाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता ऐसे भटके हुए मानव को पुन: कर्तव्य पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देती है। श्री कृष्ण कहते है 'हे अर्जुन तू नपुंसकता को प्राप्त न हो। यह तेरे योग्य है। हे परंतप! ह्रदय की क्षुद्र दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिये खड़ा हो।[3]

महाभारत के युद्ध की वास्तविक ऐतिहासिकता पर संशय भी हो तो भी पाण्डव और कौरव रूपी दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों के मधय हमारे मन में ही युद्ध (द्वंद) होता रहता है और इस युद्ध में मन रूपी अर्जुन को निराश न होकर आत्मा रूपी कृष्ण की आवाज सुनकर उचित आचरण करने का संदेश गीता हमें देती है प्राय: हिंदू धर्म पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि यह सांसारिक समस्याओं से दूर अप्राप्य का प्राप्त करने पर बल देता है किंतु ऐसा नहीं है क्योंकि वास्तव में गीता हमें शिक्षा देती है कि हम संसार में रहें और कर्म करें।

गीता का मुख्य प्रयोजन ऐतिहासिक न होकर नैतिक है। नैतिक चेतना एवं भौतिक पूर्णता का आदर्श केवल मनुष्य के संदर्भ में ही प्रासंगिक है। यदि मनुष्य अपने मनोवेगों और वासनाओं के अनुसार अन्धा होकर कार्य करता है। और मनुष्य होने के कारण अपने कार्यों को उचित सिद्ध करता है। गीता का मानना है कि कम प्राणी का स्वभाव है कर्म किए बिना कोई भी प्राणी एक क्षण भी नहीं रह सकता। 'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत'[4] किंतु कर्म किस प्रकार करने चाहिए, यह समझ पाना कठिन है।

कर्म तो करना ही है लेकिन इस कौशल के साथ करें कि वह बन्धन का कारण न बने। वरन् हमारे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करे।

गीता जिस समस्या के साथ प्रारंभ होती है वह कर्तव्य विमुख अर्जुन को पुनः कर्तव्य पथ पर लाना था। सारे उपदेश में गुरू कृष्ण ने संसार को भ्रम और कर्म को जान समझ कर टाला नहीं वरन् संसार में पूर्ण सक्रिय जीवन जीने का उपदेश दिया है। इस प्रकार गीता कर्म का आदेश है। सांख्य में कर्म को बन्धन का कारण माना जता है। लेकिन गीता हमें वह दृष्टि देती है। जिससे कर्म से मुक्ति की प्राप्ति के साथ-साथ सांसारिक कर्तव्य पालन का दोहरा लक्ष्य सिद्ध होता है। कर्म सकाम और निष्काम दो प्रकार के होते हैं। सकाम जो किसी विशेष इच्छा पूर्ति के लिए किया जाये। जबकि निष्काम कर्म किसी कामना पूर्ति के लिये नहीं किए जाते। सकाम कर्म बन्धन का कारण है क्योंकि एक कामना पूरी होने पर दूसरी का उदय होता है यह श्रृंखला चलती रहती है। बन्धन इसी कामना से होता है जिससे प्रेरित होकर कर्म किया जाता है इसलिए कामना या इच्छा का त्याग होना चाहिए कर्म का नहीं। गीता इच्छाओं सें विरक्त होने का संदेश देती है कर्म से नहीं। गीता में एक ओर कर्म का आदेश है दूसरी तरफ फलासक्ति से कर्म बन्ध दृढ़ होता है ऐसा माना जाता है। इस प्रश्न के समाधान में यह कहा जा सकता है। कि बन्धन का होना कर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। गीता में संकल्प की स्वंतत्रता को स्वीकार किया गया है फिर भी संकल्पित कर्म में यदि कर्ता भाव है तो कर्म इष्ट, अनिष्ट, मिश्रित तीन प्रकार का फल देते है। यदि कर्म में ''मैं कर्ता नही हूँ'' यह भाव होगा तो बन्धन नहीं होगा। उसे चेष्टा मात्र कहा है।[5] चेष्टाएं कर्मबन्धन से छुटकारा दिलाने में सहायक होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में निष्काम कर्मयोग का वर्णन दूसरे अध्याय के 47वें श्लोक में मिलता है ''तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है फल में नहीं इसलिए तुम कर्म फल की वासना वाला मत बनों और कर्मो को छोड़ देने का विचार भी मत करो।''

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेशु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संडगोडस्त्वकर्मणि।[6]

यदि मनुष्य कर्मफल में अनासिक्त और परमात्मा के पति समर्पण की भावना विकसित कर लें तो जो कुछ प्राप्त होता है उसे ग्रहण कर लेंगे और जब आवश्यकता होती है तब वह बिना दुःख के उसे त्याग भी देता है। इस प्रकार कर्म यज्ञ या बलिदान बन जाता है। जब कृष्ण अर्जुन को युद्ध की शिक्षा देते है तो वह युद्ध को समर्थन नहीं देना चाहते हैं। गीता हमारे सम्मुख जो आदर्श प्रस्तुत करती है वह अंहिसा का है, यह बात सातवें अध्याय में मन, वचन, कर्म की पूर्ण दशा के और बारहवें अध्याय में भक्त के मन की दशा के वर्णन से स्पष्ट हो जाती है।[7] कृष्ण अर्जुन को बिना राग द्वोष (अनासक्त) युद्ध करने को कहते हैं क्योंकि यदि मन ऐसी स्थिति में ले आएं तो हिंसा असंभव हो जाती है। अनासक्त भाव का अर्थ है निर्लिप्तता। जैसे कमल का फूल जल में रहते हुए भी उससे अलग (निर्लिप्त) है।

निष्काम भाव या अनासक्त भाव प्राप्त करने में निम्नलिखित बातें सहायक हैं-चेष्टाएं स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं होती हमारे पास जितनी समझ हो उसी के अनुसार दूसरों की सेवा करें तो यह लोक कल्याणकारी होगा। गीता में व्यावहारिक नैतिकता के स्तर पर लोक संग्रह (सामाजिक कल्याण) को परम पुरूषार्थ मानना इसी का प्रतीक है।[8] सामाजिक कल्याण हेतु व्यक्ति को अपने वर्ण के लिए निर्धारित स्वधर्म पालन पर बल दिया गया है। गीता (18/42-44) में चारों वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का कर्म आधारित वर्ण विभाजन स्वीकार किया गया है। इस सृष्टि चक्र में यदि एक भी व्यक्ति कर्तव्य पथ से हटता है तो संपूर्ण सृष्टि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।[9] जो व्यक्ति मन और इन्द्रियों को पूरी तरह से अपने वश में कर लेता है वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है जिसकी बुद्धि स्थिर है वह परम शान्ति को प्राप्त करता है। तब आत्मा की शिक्षा उज्ज्वल ओर निर्मल रूप से जलने लगती है जैसे वायुहीन स्थान में रखा दीपक जल रहा हो।[10]

परम शान्ति की अवस्था समत्व की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति कर्म, निष्क्रिय होकर नहीं वरन् निष्काम भाव से, करता है। गीता में समत्व को योग कहा गया है। सिद्धि असिद्धि को समान समझना ही समत्व योग है। समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मों में कुशलता है।

''योग: कर्मसु कौशलम्''

श्रीमद्भगवद्गीता का निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति और निवृत्ति में समन्वय स्थापित करता है। प्रवृत्ति अर्थात्-समाज में रहते हुए कर्म करना है जबकि निवृत्ति अर्थात् समाज में सम्बन्ध विच्छेद कर लेना। गीता का निष्काम कर्म, कर्म के फल के त्याग द्वारा इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करता है। इस प्रकार कर्म योग ही मध्यम मार्ग है। जहां तक भक्तियोग की बात है तो भक्ति व्यक्ति का परमात्मा के साथ विश्वास ओर प्रेम का सम्बन्ध है। अव्यक्त की पूजा साधारण मानव प्राणियों के लिए कठिन है ऐसे में वैयक्तिक परमात्मा की पूजा दुर्बल और निम्न अशिक्षित अज्ञानी सब लोगों के लिए एक सरलतर उपाय है। श्रीमद्भगवत् पुराण में नौ प्रकार की भक्ति की चर्चा है।

श्रवर्ण कीर्तन विष्णोंः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चन वन्दं दास्य सख्यं आत्मनिवेदम्।।[12]

इनमें से व्यक्ति चाहे जिस भावना से ईश्वर की भक्ति कर मोक्ष मार्ग पर बढ़ सकता है। इन सभी भक्ति के प्रकारों में सबसे महत्वपूर्ण तत्व है भक्त का अंहकार शून्य होकर ईश्वर के प्रति पूर्ण सर्मपण। भगवान की करूणा के विश्वास पूर्ण आत्मसाकरण के प्रति आत्म समर्पण। जब आत्मा अपने आपको परमात्मा को समर्पित कर देती है। तो परमात्मा हमारे ज्ञान व त्रुटियों को अपना लेता है। उसके योग क्षेम का भार ईश्वर को वहन करना पड़ता है। जैसे बिल्ली अपने बच्चों को सुरक्षित स्थान पर पहुंचा देती है। उसमें बच्चे को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता केवल अपनी माँ के प्रति पूर्ण समर्पण करना होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को विविध प्रकार से

उपदेश देने के उपरान्त कहते हैं कि यदि तुझे कोई मार्ग रूचिकर नहीं लगता तो इन सब को छोड़कर मेरी शरण में आ जा फिर तेरे कल्याण की चिन्ता में करूँगा।

> सर्वधार्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
> अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षधिश्यामि मा शुचः।।[13]

भक्ति ज्ञान की ओर ले जाती है। ज्ञानी पुरूष के लिए चाहे वह समाधि में हो या पूजा द्वारा भगवान की सेवा करे दोनों एक ही बात है। भगवद्गीता में भक्ति अनुभवातीत के प्रति सम्पूर्ण आत्म समर्पण है। ऐसे भक्त में उच्चतम् ज्ञान का सार और साथ ही साथ पूर्ण मनुष्य की ऊर्जा भी रहती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में ज्ञान व ज्ञान मार्ग के महत्व को प्रदर्शित किया गया है। इसी अध्याय के आंरभ में भगवान श्री कृष्ण अवतारों के सिद्धान्त का कथन करते है-यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधार्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[14] तथा संसार का नियम यक्ष को बताते हुए कर्म और यज्ञ के बीच तादात्म्य स्थापित करते हैं कितुं यह भी कहते है कि "हे अर्जुन भौतिक पदार्थों द्वारा किये जाने यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ अधिक अच्छा है क्योंकि निरपवाद रूप से सब कर्म ज्ञान में जाकर समाप्त हो जाते है।"[15] "उस सर्वोच्च ज्ञान को सविनय आदर द्वारा, प्रश्नोत्तर द्वारा और सेवा द्वारा प्राप्त करों। तत्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश देंगे।"[16]

परन्तु केवल बौद्धिक ज्ञान से भी काम नहीं चलेगा क्योंकि बुद्धि हमें परब्रह्म की केवल आंशिक झलक ही दिखला सकती है अर्थात् यह परब्रह्म की चेतना उत्पन्न नही कर सकती। इसके लिए शिष्य को आंतरिक मार्ग पर चलना होगा। सर्वोच्च प्रामाणिकता आंतरिक प्रकाश है।[17] जब तू इस ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। तब तू सभी भ्रान्तियों व भेदों से मुक्त हो जाएगा एवं जब भेद की भावना नष्ट हो जाती है तब कर्म बन्धनकारी नहीं बनते क्योंकि अज्ञान बन्धन का मूल है और आत्मा ज्ञान प्राप्त करने के बाद उस अज्ञान से मुक्त हो जती है।[18] इसके पश्चात् भगवान श्री कृष्ण इस तथ्य का उजागर करते हुए कि ज्ञान के लिए श्रद्धा आवश्यक है "श्रद्धावान लभते ज्ञानम्"[19] अपनी बात को आगे बढ़ाते है।

कुल मिलाकर गीता के अनुसार हमारे लिए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचने के तीन विभिन्न मार्ग हैं-वास्तविकता का ज्ञान (ज्ञान) भगवान की उपासना (भक्ति) या संकल्प को दित्य प्रयोजन के अधीन कर देना (कर्म)। इन तीनों में अन्तर अलग-अलग सैद्धान्तिक, भावनात्मक और व्यावहारिक पक्षों के आधार पर किया गया है। मनुष्य भी विभिन्न प्रकार के होते है-चिन्तनशील, भावुक, या सक्रिय। परन्तु वे एकान्तिक रूप में किसी एक प्रकार के नहीं होते। अन्त में जाकर ज्ञान, भक्ति और कर्म परस्पर मिल जाते है। परमात्मा अपने आप में संतचित और आन्नद अर्थात् वास्तविक, सत्य और परम आन्नदमय है। जिस प्रकार परमात्मा में ये तत्व मिश्रित रहे हैं, उसी प्रकार तर्क की दृष्टि से भले ही ज्ञान, संकल्प और अनुभूति में अन्तर किया जा सकें, परन्तु वास्तविक जीवन में और मन की एकता में तीनों पहलुओं में अन्तर नहीं किया जा सकता। वे आत्मा की एक ही गति के विभिन्न पहलू हैं।

यही कारण है कि गीता पर अनेक भाष्य लिखे गये है मुख्य विवाद यह है कि गीता में किस बात का उपदेश दिया गया है। शंकराचार्या ज्ञान को, रामानुज भक्ति को मध्याचार्य, बल्लभाचार्य, निम्वार्काचार्य भक्ति को अधिक महत्व देते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर ने पातंजल योग और तिलक ने गीता में कर्म मार्ग की प्रधानता स्वीकार की है। जबकि मधुसूदन सरस्वती की मान्यता है कि गीता कर्म, उपासना ओर ज्ञान तीनों को स्वीकार करती है। और क्रमशः प्रत्येक के विषय में छः अध्यायों का प्रतिपादन किया गया है।[20]

वामन पण्डित में अपनी यथार्थ दीपिक में उचित ही कहा है कि कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने विचार से गीता की व्याख्या करता है।[21] मधुसूदन सरस्वती का मत समन्वयात्मक है। कर्म, ज्ञान, उपासना तीनों को समान महत्व देना मनोवैज्ञानिक मान्यता के भी अनुरूप है मानसिक प्रक्रियाएँ तीन प्रकार ही होती है-ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक (इच्छात्मक)। तीनों का समन्वय ज्ञान भक्ति व कर्म में होता है।

अतः गीता में ज्ञानयुक्त भक्ति पूर्वक कर्म करने का उपदेश दिया गया है। ऐसा कर्म निष्काम कर्म है। सामान्य शब्दों में श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग, एवं योग मार्ग की पृथक-पृथक व्याख्या करते हुए इनका समन्वय किया गया है। क्योंकि भगवान श्री कृष्ण के अनुसार जब कोई साधक तत्व ज्ञान प्राप्त करते हुए अपने समस्त कर्मो का निष्काम भाव से करते हुए उन्हें ईश्वर से प्रति समर्पित कर देता है तब ही वह मोक्ष को प्राप्त होता है, जो मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है।

अंततः गीता का निष्काम कर्म योग जीवन की वास्तविकता को प्रकट करता है। विलियम वॉन हम्बोल्ट के अनुसार "यह सबसे सुन्दर और यथार्थ अर्थों में संभवतः एक मात्र दार्शनिक गीता है जो ज्ञात भाषा में लिखा गया है।"[22]

आपाततः 'गीता' युद्ध को प्रोत्साहन देती प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः उसका एक मात्र उद्देश्य कर्तव्य से विमुख अर्जुन को कर्तव्य निष्ठा की ओर प्रेरित करना है। 'गीता' एक महातन संग्राम का आधार होती हुई भी मानवता के लिए यह सन्देश देती है कि जीवन का वास्तविक ध्येय मारकाट एवं युद्ध लिप्सा न होकर उस सद्गति को प्राप्त करना है, जहाँ अपने पराये का भेद मिट जाता है।

श्रीमद्भगवद्गीता की महत्ता प्रतिदिन के जीवन में इसकी उपादेयता से सिद्ध होती है। 'गीता' किसी वर्ग सम्प्रदाय, धर्म देश या व्यक्ति के लिए न होकर सभी के लिए है। जो व्यक्ति इसे जीवन में उतारता है वह जीवन संघर्ष में विजयी होता है। श्रीमद्भगवद्गीता की कर्म दृष्टि व्यक्ति को व्यक्ति के नियत कर्तव्यों के लिए प्रेरित करने के साथ ही दूसरे के प्रति कर्तव्य भी निर्धारित करती है। लोक संग्रह या सामाजिक कल्याण का यह आदर्श सार्वभौम है।

स्वार्थ की भावना से किए गऐ काम्य कर्मो की अपेक्षा निष्काम कर्म को श्रेष्ठता दी गई है क्योंकि निष्काम कर्म की भावना वस्तुतः एक ऐसी सार्वभौम भावना है, जिससे एक व्यक्ति की और कर्मो के

अधिष्ठाता परमेश्वर की एक जैसी स्थिति होती है। निष्काम कर्म का संदेश हमारी भावनाओं का आध्यात्मीकरण कर देता है। व्यक्ति को स्वार्थ से परार्थ की ओर ले जाता है। गीता की समग्र योग पद्धति त्रिगुणात्मक है-सत्, रज, तम। इनमें शरीर, आत्मा, मन तीनों आयाम गुंथे हुए हैं। गीता का कर्म योग, ज्ञान योग, भक्ति योग जहाँ एक और इच्छात्मक, ज्ञानात्मक, भावनात्मक मानसिक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करता है वहीं दूसरी तरफ व्यक्तित्व के सूक्ष्म, स्थूल, कारण तीनों आयामों को समायोजित करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं मनोवैज्ञानिक रूप से भी पुष्ट हैं। अंर्तद्वंद की समस्या का सम्बन्ध व्यवहार से है और व्यवहार का सम्बन्ध चित्त से क्योंकि व्यवहार ही संस्कारों के रूप में चित् में अंकित होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इन्हें समत्वयोग के द्वारा समायोजित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता दोनों अतिवादी दृष्टियों का समन्वय करते हुए प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच भी समन्वय प्रस्तुत करती है। आज के भौतिकवादी युग में भी पूर्ण निवृत्ति के मार्ग का विकल्प तो अत्यन्त क्षीण हो गया है। किन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रवृत्ति की अधिकता में व्यक्ति अपने कर्तव्य को विस्मृत कर सकता है यही कारण है कि आज वर्तमान भौतिक सम्पन्नता के दौर में नैतिकता कहीं पीछे छुटी दिखाई पड़ती है। इन परिस्थितियों में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता स्वाभिाविक रूप में सिद्ध हो जाती है। एंव निष्काम कर्म योग से उच्चतर कोई विकलप नहीं दिखलाई पड़ता। इसी बात को प्रोफेसर हिरियन्ना इन शब्दों में व्यक्त करते है, "अब इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि लोग अपने कर्तव्यों को छोड़कर सन्यासी बन जाएंगे जैसा कि अर्जुन ने चाहा था। खतरा तो दूसरी ओर है अपने अधिकारों को मांगने और उनका उपयोग करने की व्यग्रता में हमारी अपने कर्तव्यों को भूल जाने की आंशका है। अत: गीता के उपदेश की आवश्यकता अब भी उतनी है जितनी कभी थी। समय बीतने के साथ इसका मूल्य घटा नहीं है। और यही इसकी महत्ता का प्रमाण है।"[23]

नैतिक पूर्णता का कोई आदर्शा ऐसे मनुष्य के संदर्भ में ही प्रासंगिक है जो समाज का एक बौद्धिक अभिकर्ता है। ऐसी परिस्थिति में समष्टिगत सामाजिक संरचना व्यक्तिगत नैतिक आदर्श की एक पूर्व शर्त बन जाती है और सामाजिक परिप्रेक्षता के अभाव में नैतिकता भी महत्वहीन हो जाती है और अत: वर्तमान सामाजिक सन्दर्भों में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर चर्चा किए बिना इसकी नैतिकता खोखली प्रतीत होने लगती है। वर्तमान सन्दर्भों में भी पूर्ण समता एक आदर्श है। जबकि समाज में स्तरीकरण एक व्यावहारिकता है। जो तत्कालीन समाज में भी थी एवं वर्तमान समाज में भी स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में समष्टिगत सामाजिक उत्थान के लिए इसके सभी स्तरों पर और सभी अभिकर्ताओं के द्वारा धर्म अथवा कर्म का पालन जिसका तात्पर्य कर्तव्य से लिया जाना चाहिए। एक अपरिहार्यता बन जाती है एवं यही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासंगिकता व उपादेयता है।

परम्परागत व आधुनिक दोनों संदर्भों में राज्य को समाज के एक अंग के रूप में ही देखा जाता है। ऐसी स्थिति में श्रीमद्भगवद्गीता की राजनीति उपादेयता का स्पर्श किये बिना इसकी सामाजिक उपादेयता को पूर्ण नहीं माना जा सकता। जिन संदर्भों व परिस्थितियों में श्रीमद्भगवद्गीता का उपदेश दिया गया वह तत्कालीन राजनीतिक द्वंद व कलह का ही परिणाम थी। हमारी वर्तमान राज्य व्यवस्था भी इसका अपवाद नही हैं, जिसमें कतिपय राजनीतिक समस्याओं के लिए कर्तव्य बोध की अनभिज्ञता से अधिक कर्तव्य से विमुखता को उत्तरदायी माना जाता है। ऐसी परिस्थिति में कर्त्तव्य के लिए प्रेरक श्रीमद्भगवद्गीता के सन्देश हमारी राजनीतिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिए एक सफल मार्गदर्शक के रूप में सामने आते हैं।

समाज व राज्य दोनों ही व्यक्ति के अभाव में नहीं टिक सकते एवं यही कारण है कि बहुत से चिंतकों ने वैश्विक समाज, विश्व राज्य, विश्व नागरिकता जैसी संकल्पनाएं दी हैं जिसे वर्तमान उदारीकरण के युग में कभी-कभी विश्वागाँव भी कहा जाता है। यहीं कारण है कि मानवीय समस्याएं किसी देश काल में सीमित नहीं मानी जाती। चूंकि मानव चित की गति, स्वरूप, संरचना इत्यादि में कतिपय समानताएं दिखलाई पड़ती हैं इस कारण मनोवैज्ञानिक रूप से श्रीमद्भगवद्गीता के कर्त्तव्य प्रेरक संदेश केवल भारतीय संदर्भ में ही नहीं वरन वैश्विक सन्दर्भों में भी प्रांसगिक हो जाते हैं यही कारण है कि विभिन्न भाषाओं में श्रीमद्भगवद्गीता का अनुवाद करके लोग इसका व्यावहारिक लाभ उठा रहे है।

यदि वैश्विक सन्दर्भों में देखा जाए तो आज आतंकवाद, पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएं मानव अस्तित्व के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों है। यह दोनों ही अज्ञानता के कारण उत्पन्न होने वाली कर्त्तव्य विमुखता से जुंडी हुई है। अत यहाँ श्रीमद्भगवद्गीता के कर्त्तव्य आधारित कर्म प्रेरक सन्देश एक व्यावहारिक समाधान की ओर ले जाते है।

निष्कर्षत: श्रीमद्भगवद्गीता एक सार्वभौम जीवन दर्शन की पुस्तक है अर्थात इसकी कुछ ऐसी आधारभूत विशेषताएं हैं जो व्यापक विचारजगत के लिए समान रूप से ग्राह्य हैं। ये विशेषताएं है सत्य, अहिंसा, त्याग, निरपेक्षता, समत्व, कर्म, ज्ञान और उपासना की। ये विशेषताएं वेदों और उपनिष्दों से मिली हैं किन्तु उनको जिस व्यापक रूप में समस्त मानवता को दृष्टि में रखकर उसी के बीच का एक अंश लेकर उसकी विभिन्न स्थितियों की ऐसी व्याख्या करना कि जिसमें शक्ति, व्यक्ति की संवेदना मिली हो समष्टि का हृदय मिला हो। गीता की इसी सार्वभौम दृष्टि को देखकर श्रीमती एनी बेसेन्ट ने कहा था, "गीता का वह संगीत केवल अपनी ही जन्मभूमि तक सीमित न रहा अपितु धरती के भिन्न-भिन्न भागों में प्रवेश कर प्रत्येक देश के प्रत्येक भावुक हृदय व्यक्ति में उसने वहीं प्रतिध्वनि जगायी।"[24] यहीं कारण है कि सहस्त्रब्दि के व्यक्तित्व महात्मा गांधी ने गीता की उपादेयता को इन शब्दों में व्यक्त किया, "यदि कोई मुझसे कहे कि संसार की किसी एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक को चुन लो तो मैं गीता को ही हाथ लगाऊंगा। जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और जब बिल्कुल एकाकी मुझको प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखलाई पड़ती तब मैं गीता की शरण लेता हूँ। जहाँ तहाँ कोई न कोई श्लोक मुझे ऐसा दिखलाई पड़ जाता है कि मैं विषम विपत्तियों में भी तुरंत मुस्कुराने लगता हूँ और मेरा जीवन बाह्य विपत्तियों से भरा रहा है और यदि वे मुझे पर अपना कोई दृश्यमान,

अमिट चिन्ह नहीं छोड़ जा सकी तो इसका सारा श्रेय भगवद्गीता को ही है।”[25]

सन्दर्भ

1. राधाकृष्णन, ‘भगवद्गीता’, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1969, पृ. 16
2. गीता 1/31
3. स्वामी अडगडानन्द जी, ‘यथार्थ गीता’, श्री परमहंस स्वामी अडगडानन्द जी आश्रम, मुम्बई, 2015 पृ. 27
4. गीता 3/5
5. वहीं 3/33
6. वही 2/47
7. राधाकृष्णन, ‘भवगद्गीता’, पूर्वोक्त, पृ. 75
8. सिन्हा, जे॰एन॰, ‘नीतिशास्त्र’, पृ. 248
9. बाल्मीकी रामायण उत्तर काण्ड 73, 76
10. राधााकृष्णन, ‘भवगद्गीता’, पूर्वोक्त, पृ. 51
11. गीता 2/50
12. भवगद्गीता यथारूप, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई 1990, पृ. 24
13. गीता 18/66
14. गीता 4/7
15. वही 4/33
16. गीता 4/34
17. राधाकृष्णन, ‘भवगद्गीता’, पूर्वोक्त, पृ. 171
18. गीता 4/35
19. गीता 4/39
20. राधाकृष्ण, ‘भारतीय दर्शन भाग-1’, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1969 पृ. 511
21. बंदिष्टे डी॰डी॰, ‘दार्शनिक निबन्ध’, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, 1995, 233
22. वही, पृ. 233
23. एम॰ हिरियन्ना, ‘भारतीय दर्शन की रूपरेखा’, मोतीलाल बनारसी दास नई दिल्ली, 1993, पृ. 923
24. बंदिष्टे डी॰डी॰, पूर्वोक्त, पृ. 233
25. गांधी मोहनदास कर्मचन्द, ‘यंग इंडिया’, पृ. 1078–1079